उसकी माँ



वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली-110002

उसकी माँ

केवल गोस्वामी

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1995
© लेखकाधीन : मूल्य 45.00
आवरण : चेतन दास

तरुण प्रिंटर्स
रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

USKI MAA—Kewal Goswami

चाची की स्मृति को
सादर
सोलहवीं पुण्यतिथि पर

क्रम

उसकी माँ

उसकी माँ
खून का दरया फलाँग कर आई थी।
माथे पर प्रश्नचिह्न—
और आँखों में
पिघली मोमबत्तियों की आँच,
घुटनों तक—नहीं—शायद कमर तक
अँधेरे में डूबी
खोज रही थी एक ठोस धरातल,
खड़ी होकर जिस पर पल-भर
वह वर्तमान को पहचान सके
जान सके
योग-वियोग का लेखा-जोखा।

पाषाण युग से अणु युग
के मध्य लटकता
प्रश्नों से केवल प्रश्नों से घिरा
त्रिशंकु-सा जीवन
जिनके उत्तर
हैं तो सही किसी खोपड़ी में
पर कहाँ है वह खोपड़ी

कोई बताए तो सही
किन्तु कोई क्यों बताए ?

चारों तरफ
उमड़ता दया का सैलाब
अनवरत हवा का दबाव
इतना कि शिथिल पड़ जाए—
पूरा जिस्म
झुक जाए कमान की तरह
भीग जाएँ
स्वप्नमयी आँखें अकस्मात
एड़ी से चोटी तक
टप ! टप ! टप !
बहती शर्मिन्दगी···

करुण ध्वनियाँ
चीखती हैं पेड़ों के पत्तों के साथ
वातावरण को चीरती
अधेड़ वक्ष के आर-पार—
'हाय बेचारी' !
एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे तक
भटकते पाँव—थके—किन्तु हारे नहीं,
सिर पर सूरज का गोला
नीचे अंगारों की पगडण्डी
माथे पर लिए बेचारगी की परिभाषा
हर खुले किवाड़ पर
लटकता प्रश्नचिह्न
जैसे गले में लटकता काला नाग
कुण्डली मारे।

कैसी हैं ये पाँवों की बेड़ियाँ

तेज कर देती हैं जो
दिलों की धड़कनें
खुलने की अपेक्षा भिच जाती हैं—
मुट्ठियाँ
फिर भी एक धुँधली उम्मीद
कि शायद
एक हल्का-सा सहानुभूति भरा हाथ
झुकी हुई डालियों की तरह
तान दे भुजाओं को
एक बार फिर—
ऐसा हो जाए तो
रक्त के उफनते फ़व्वारे
पूछते हैं फड़फड़ाती धमनियों से
ऐसा हो जाए तो
देख सकेंगे न वह
अपने हिस्से का आकाश ?
जमीन में गड़ी आँखों को
उठा पाएँगे एक बार फिर
वे बेचारे शरणार्थी।

जब तक
पदार्थों के आकार-प्रकार
होते हैं कल्पना में
आती है नाक में
विभिन्न व्यंजनों की गंध
दिवास्वप्न तभी तक सुहाते हैं
अंधे तालाब में
सिर तक डूब जाने पर
यह भी नहीं उभरता स्मृति पटल पर
कि देखा था कभी सूरज,
याद नहीं आता

कि कभी इन हाथों ने
नरम-नरम आँच पर सिकी
रोटियाँ भी तोड़ी थीं।

पेट ! जैसे एक जलता हुआ अलाव
शोले ! भीतर ही भीतर जलाते—
चीड़ वन।
सोख लेते रक्त की आखरी बूंद।
किन्तु !
फिर भी वह
डिगने नही देना चाहती
हड्डियों का ढांचा
बूढ़ी तो नहीं पर
यौवन भी छोड़ आई है जो
बहुत पीछे
स्मृतियों से परे
कुछ भी तो नहीं दिखाई देता
कुछ भी तो—
धाँय-धाँय जलती चिताओं,
कर करा कर गिरती इमारतों
या धड़धड़ करती
चलती निरन्तर
खूनी खंजरों की गाड़ियाँ
सूखी घास की तरह
आरों पर कटती बेवस जिन्दगियाँ,
सहमे ! खामोश ! दहशतजदा !
रिसते-पिसते लोग !
कौन जात ! कौन नाम !
कौन गाँव ! कौन ठाँव !
कौन कहे, किससे कहे
इधर से उधर बेतहाशा भागते लोग

लोग तमाम लोग।

तेरा शुक्र है सच्चे पातशाह!
दीनबंधु! तू ही तू है
या खुदा! परवरदीगार
ओ गॉड
चीखें जम जाती हैं
एक बिन्दु पर सभी भाषाएँ
सभी दुआएँ
यादें-फरियादें
और झनझनाती हैं हड्डियाँ
चमकती हैं आँखें एक बार फिर
शून्य में खोजती प्राणबिन्दु।

कोई भी नहीं दूर-दूर तक।
कहीं बाहर नहीं
बनैले जानवर—चौकड़ी भरते
एक-दूसरे के खून के प्यासे
कहाँ से शुरू हुआ था यह सिलसिला
अनुसंधानों का दीवानों का?
एक पागल कारवाँ
कहीं कोई मंजिल नहीं जिसकी
कहाँ रास्ते हैं—अंधे रास्ते?
इसे कोई भी नाम दे लो
सहूलियत के लिए
कह लो आतंकवाद
या फिर साम्प्रदायिकता
क्या फर्क पड़ता है
खून के रँग में
या मौत के ढँग में।

कुछ भी तो नहीं बदला
वर्षों के हेर-फेर के अतिरिक्त,
कुछ इमारतें ढह गईं
उग आए कुछ नए भवन
धरती के सीने पर
किंग जार्ज रोड की जगह
महात्मा गांधी मार्ग
बस इतना ही तो बदला
आजादी के बाद
उजड़े करोड़ों लोग
घर के रहे न घाट के।
यों तो छितरा गए
राजधानी में अनेक घाट
किन्तु !
बेबस ! बेचारे लोग तरसते रहे
पाने को—एक टूटी हुई खाट
किसी अस्पताल के
एक कोने में
जहाँ दम तोड़ दें वे
और फेंक दिए जाएँ
किसी लावारिस लाश की तरह
फूंक दिए जाएँ
बिजली की भट्टी में।

विचित्र तो है वह औरत !
आप कह सकते हैं ऐसा
इसलिए भी
कि जब ठान ली एक बार
जीने की जिद्द
मौत को धत्ता बताती रही
हर मोड़ पर

खेलती आंखमिचौनी
धूप-छांव में टटोलती
अपना एक घर
भले ही टूटा-फूटा
झोंपड़ीनुमा
कीवाड़ों-दीवारों के पीछे
सुरक्षित हो जहाँ
ईमान की तरह सहेजी
उसकी औलाद ।
वह जरूर बचा लेगी उन्हें
अपनी बोटियाँ खिला कर
पिलाकर रक्त की अंतिम बूंद
सुर्ख-रूह होगी वह सचमुच
एक दिन
गर्व से सिर ऊँचा कर
धरती को नाप लेगी
छू आएगी क्षितिज को
थकेगी क्यों भला ।

जानती नहीं वह
थकान की भाषा
नहीं चढ़ा कभी उसे ज्वर
वह औरत
सड़कों पर पैदा हुई हो जैसे
सड़कों के लिए
'एक शरणार्थी औरत ।'
'बेचारी बेवा'
भागते हुए सम्बोधन
उसके साथ-साथ !
पर वह रुकी क्या कभी
झुकी किसी के आगे

रोई या गिड़गिड़ाई ?
कभी नहीं खोला
पोटली में बँधा दुःख
जान गई थी वह जीने का रहस्य
पहचान गई थी दुनिया की चाल
खुश होती है दुनिया
चहकती है—
देखकर, बद से बदतर हालात
क्यों दिखाए वह किसी को
पेट के घाव
माथे का पसीना भर देगा
एक दिन
रिसते हुए ज़ख्म
कैसा अटूट विश्वास है उसका
हिमालय से बड़ा
दृढ़ और महान।

बीते दिनों से
पाती है वह भरपूर शक्ति
जब कि
एक नन्हा-सा साफ-सुथरा घर,
सुख-सन्तोष भरा-पूरा तो नहीं
पर निराशा के बादलों से भी दूर !
उन्ही दिनों
हाँ शायद उन्ही दिनों तो
उसके भीतर
जन्मी थी एक टिमटिमाती कंदील
मन-वृन्दावन
खिल-खिल जाए
वह निकले रस की निर्झरी
चिरागों की तरह

रौशन हों बच्चों के चेहरे
बस इतना भर चाहना
सोने के पहाड़ माँगना नहीं था।

किन्तु
कहाँ-कहाँ नहीं भटकना पड़ा उसे
किस-किस चोखट को नहीं चूमा
पति की गोद में
देने को एक पुत्र रत्न
भरने को बुझती आँखों में
आशा की सुनहरी किरण,
कहीं से मिले
ईश्वर की आरती
या अल्लाह की अजानों से
बदतमल की समाधि
या पीर की बगीची से
छीन लाएगी वह
एक दिन
एक नन्हा चिराग
उस छोटे घर के लिए।

आदमी का दर हो
या देवता का द्वार
जानती थी वह औरत
भलीभाँति अपना अधिकार
असम्भव की सीमाओं के पार भी थे
उसकी उम्मीदों के दायरे,
माथे से पोंछ देना चाहती थी वह
कन्या प्रसवनी का दाग
उसकी कोख में
अनवरत सुलग रही थी यह आग

वह देगी अवश्य एक दिन
पति को यह उपहार
हल्का कर देगी
उसकी छाती का भार
गिड़गिड़ाएगी
देवताओं से झोली फैलाकर
माँग लाएगी
अपनी मुराद।

उसकी कोख
ठंडी हुई भले ही कई दिनों बाद
दूर हुई कन्या प्रसव की थकान
गर्वीली ग्रीवा में
झलका बाँकपन
अन्ततः खिला तो सही
मन-वृन्दावन
हर्षायी ममता
वात्सल्य उमड़-उमड़ आया
किन्तु कितने दिनों
उन्होंने यह सुख पाया ?
शतदल आशाएँ कहाँ
खिल सकीं बेचारी
एक-एक कर
स्निग्ध पत्तियाँ
छिन गईं सारी
गोदी में मुर्झाया
कोमल-सा फूल
काली आँधी—
शून्य में टकराती धूल।
बिखर गए एक-एक कर
नाती सम्बन्धी

क्या जाने—क्यों जाने
दुनिया यह अन्धी
फिर वही प्रश्नचिह्न
देवताओं के आगे
बाँधती रही समाधियों से
आशा के धागे
करती भी क्या
वह बेचारी-बेसहारा
जन्म से
विधना ने जिसे पटक-पटक मारा

दीपक तो जला
किन्तु ओट गई छीनी
कैसी-कैसी उम्मीदें थीं पलकों से बीनी
धसक गई पाँवों के नीचे से रेत
किधर गए चरवाहे
कहाँ गए खेत ?
वह औरत न रोई
न चीखी-चिल्लाई
यही एक बात उसकी समझ में आई
जीना है, जीना है, और अभी जीना है
विष भले जीवन का कितना ही पीना है
घटाटोप अंधकार
भीतर था बाहर था
पग-पग पर छितराए
साँपों का डर था
और वह अकेली
अक्षर से बेगानी
दबी-दबी मनों-मन बोझ के नीचे

गढे में धँसा बैल

गढ़ाता है जैसे खुरों को धरती में
घुटनों पर जोर देते
आँखे निकल आती हैं
दीन-हीन बेबस-सा
फिर से लुढ़क जाता है।
कैसे उबर पाएगी
कहाँ कुआँ खोदेगी
कहाँ से खाएगी
भूखे बच्चों को लोरी दे
कब तक बहलाएगी
अनगिनत-बेतुके
प्रश्नों का तांता है
है कोई
जिन्हें इनका उत्तर भी आता है ?
प्रतिध्वनियाँ
-टूट-टूट ! बिखर-बिखर जाती हैं,
फिर भी
उम्मीदें यों पास-पास आती हैं
होगा जरूर कहीं
उत्तर जरूर होगा
साँसों में उभरता है
ऐसा विश्वास एक
फिर होंठ भींचती है
खींचती है एक साँस
साँसों में उभरती है
धुंधली-सी एक आस
पाँवों में पंख लगा
उड़ी-उड़ी जाती है
भर्राए स्वर से केवल
यही दोहराती है
इतना निर्दयी नहीं हो सकता रब।

क्या कोई अर्थ हो सकता है
घर का
बिना स्वामी के ?
पहचानी दीवारें मुंह फेर लेती हैं
किवाड़ हो जाते हैं बदगुमां
छत पसर जाती है समस्याओं की तरह
फिर भी
स्मृतियों की फुसफसाहटें
खौलती हैं भीतर
एक भ्रम दुनिया की निगाहों में
होने न होने का—उसके भीतर
लोगों की अटकलों के लिए
था या नहीं कुछ
किन्तु !
अटकलें बदस्तूर जारी थीं
घोर क्रूर—अमानवीय अटकलें
छाती के आर-पार छेदती
अटकलें जारी थी।

सब कुछ
कैसे क्यों बदल जाता है
पगडंडियां बदलने वाले बगलगीर
आस्तीन के सांप हो जाते हैं—
खून के रिश्ते
दूर-दूर तक एक भी कंधा नजर नहीं आता
सिर रख कर रो लेने के लिए
कहीं कोई दामन—फटा-पुराना
आंसू पोंछने के लिए
मौत कितनी अपनी-सी लगती है
ऐसे में
एक राहत की तरह

धारा के बीचो-बीच
घिरी वह औरत
मूंद लेती है आंखें !
दो बूंद गर्म जल धो देता है—
चेहरे की बेचारगी
तीव्र हो उठती है जिजीविषा
दौड़ती है—किनारा पाने को।

वह लड़ेगी
नियति का आरोपित
आदमी की बेरुखी के खिलाफ़
यह युद्ध !
वह अकेली ही लड़ेगी।
भले ही आंचल की ओट पहाड़ नहीं
बचाने को काली आंधी से
टिमटिमाती लौ
किन्तु ठोस इरादों के सहारे
बन जाते हैं कभी-कभी फौलादी कवच
जुल्म के खिलाफ !
तिनके के सहारे झेल जाता है इन्सान
मुसीबतों के पहाड़।

कहां जानती थी वह
हैवानों की दहाड़
बने-बनाए घोंसलों में—सांपों की सरसराहट
एक पिशाची अट्टहास
अल्लाह या ईश्वर के नाम पर
खूनी खेल।
न जाने किन पैगम्बरों ने
कब लिखा—किसी धार्मिक किताब में
ऐसा पैगाम—कि जुजा हो

उपवन का तिनका-तिनका
बेध डालो—दुधमुँहे बच्चों की जबान
काट डालो छातियाँ—औरतों की सरेआम
मचा दो कोहराम धरती पर
कि आने वाली नस्लें—डरें कहते हुए
अल्लाह या राम-राम
और तुम ! जनून में अंधे होकर
नाचो ? लहू के कुल्ले करते हुए

देखा था उसने
जलता हुआ अपना घर
झुलसती हुई एक-एक उम्मीद
चटकते हुए गुलाब—उमड़ता-उफनता
आदमकद नफरत का सैलाब
सहमे दहशतजदा लोग
किसे कहें दोस्त
पहचानें कैसे दुश्मन को
खूनी बारिश के बीच—कैसे न पसीजें
निचुड़े हुए शरीर
आँखें मीचे
अनवरत बढ़ते दिशाहीन काफिले
उखड़े हुए पाँव—कहाँ ले जाएँगे आखिर
मौत की पनाह में या जिन्दगी की राह में ?
किसको मालूम था
कब किस दुःशासन के हाथ
पहुँच जाएँ
किसी द्रौपदी के आँचल तक ?
तार-तार सहेजा था जिसे
एकमात्र यही तो था
उसका भूत, वर्तमान, भविष्य
हर धड़कन से निकलती [illegible]

कृष्ण-हरे कृष्ण
हे नाथ नारायण वासुदेवा
देवकी के कृष्ण
कहते-कहते भर आईं छातियाँ
बरछी, भाले, तेग-तलवार की
टकराहट को भेद पाएगी क्या
उसकी क्षीण पुकार?
गहरी साँसों में कैसे कब उठ आती है
आस्था की मजबूत ढाल—बेबस जिस्मों के गिर्द
ईश्वर है! ईश्वर है! ईश्वर है!
बेसाख्ता निकलता है जबान से!

कितने दिनों महीनों का सफर
लिख गया
युगों का इतिहास उसके चेहरे पर
अजनबी धरती—अनजानी हवाओं में
रोप पाएगी कैसे वह
जिन्दगी का पौदा?
जड़ों की तरी के लिए
लाएगी—ला पाएगी—कहाँ से
जीवनदायी झरने—मंद-मंद बयार
भूरी-भूरी सोंधी मिट्टी—
गुदगुदी क्यारियों में अठखेलियाँ करते
नन्हे पौदे
झेल पाएँगे क्योंकर—गर्म हवाएँ
शोलों से घिरी फिजा
धक-धक करते सीने में
सुरक्षित थे अभी गुलाबी सपने
प्याज के छिलकों की तरह—पारदर्शी
जैसे छाती से चिपके—सहमे हुए
अबोध बच्चे।

क्या होगा ! उदास होने से
रोने से—बीते हुए कल पर
सोचती है वह
प्रश्न तो आज का है
आज जो नहीं है गौरवमय
अभय, निर्द्वन्द्व ! हल्का-फुल्का !
आकाश में तैरते बादलों की तरह।
रक्त सने जूतों से
चल सकता है कोई कितनी दूर ?
रुक भी तो नहीं सकता—एक किनारे
पल-भर जलती हुई आँखों को मूँद ?
फुर्सत कहाँ—
बहाने को आँसू दो बूँद
भीड़—बेतहाशा—लाचार—अंधी भीड़
कभी-कभी होती खूँखार
अपनी सुरक्षा के लिए करती अंधे वार
कहाँ कौन गिरा
किसके टुकड़े-टुकड़े कब बिखर गये
भूखी सड़कों पर।
बड़े इतमीनान से
देखे कोई सयाना तो···
कहाँ हैं सयाने लोग ?
एक-एक कर स्याहपोश हो गये
किलों कंदराओं में
पथरीली दीवारों के पार
कोई खजाना है खबरों का
लेती है जहाँ से अखबार
एक सच ! झूठ कई हजार
नफरत—नफरत और नफरत
फैलती टिड्डीदल की तरह
चाटती इन्सानियत-भाईचारे को

भरपूर फसल
माला-पोथी-घंटी-घड़ियाल की जगह
ले ली है हथियारों ने
ये राह ! क्योंकर कैसे पाई
अल्लाह के प्यारों ने ?
फिर वही सवाल—विस्फोटक पदार्थ की तरह
दिमगी सुरंगों में
कौन देता है आँच ?
अकेले मुझे ही तो नहीं परेशान करते
ये तेजाबी सवाल—सोचती है वह
नहीं होंगे जब तक हल—बचेगा
बचेगा किस तरह किसी का ईमान ?
बेबस-बेघर लोगों के पास
क्या बचा है और खोने को
ईमान के सिवाए ?
गोलियों की धाँय-धाँय
वादियों की चकाचौंध के बीच
कितनी जानें गईं
हिसाब होगा क्या
सरकारी खातों में
लगाते हैं जो मृतक के
ईमान का मुआवजा ?
सुनते ये
मृत्यु के बाद
जाते हैं राजा-रंक
एक ही रास्ते पर
गलत सुनते थे हम श्रीमान
बोलते हैं सरकारी आँकड़े।
गनीमत है
दस-बीस हजार मरे मजदूर को
यदि मिल जाए मुआवजा

किन्तु ! लाखों के होते हैं
मरने के बाद अफसर बड़े।

अधजने विश्वासों को
फटे आँचल में समेटे
बुढ़ा गई वह
पाँवों में नहीं रही चलने की ताकत
गो कि लम्बा सफर तय करना है उसे
किसके लिए ? कहाँ है उसका गंतव्य ?
सोचती है बहुत बार
बौरा जाती है
नोच फेंकना चाहती है
जिस्म से लिपटी अमर बेल।
चूषकांगों से
निचोड़ ली है जिसने
रक्त की आखरी बूँद।
किन्तु कैसे फेंक दे तोड़कर
अपने से अलग ?
जब तक जीवित है—पलेंगी
ये अमर बेलें
उसके मांस-मज्जा पर
कहाँ कैसे
किसने किया निर्मूल इन्हें ?

महसूसती है वह
भीतर ही भीतर एक गहरा शून्य
हुई तो है
कहीं किसी से कोई भूल
या अंधी ममता
नहीं करना चाहती उन्हें
आँचल से दूर।

जीवन भर उड़ेलती रही
कानों में
एक जहरीला मवाद
सुख-शांति की तलाश
पाती रही जिह्वा पर
हमेशा एक कसैला स्वाद।
बूढ़ी हड्डियों को कसती रहीं निरन्तर
पागल लताएँ
घर की दीवारों पर
गश्त करने लगीं छिपकलियाँ
घर के भीतर
साँय-साँय करने लगीं
नफरत की हवाएँ।

वह औरत छूटती गई पल-पल
छूटती गई जिन्दगी
उसकी गिरफ्त से धीरे-धीरे,
तैरने लगे
लाल पीले नीले तारे
साँसों के सामने
नाचने लगी भूतही परछाइयाँ।
सहमे हुए लोगों के सिरों पर
रखने वाली ममता भरा हाथ
देखते ही देखते
स्वयं हो गई अनाथ
खिड़की के टूटे काँच से देखती
भागती हुई सड़कें
बदहवास लोग
हाथों में बर्छी भाले लिए
बरसों से काटते हुए
नफरत की फसल

अल्लाह-हू-अकबर
जय श्री राम
एक क्षीण हँसी हँसती है
वह औरत
एक आसरा था तेरा राम
बेच दिया इन लोगों ने तुझे भी
थोथी सियासत के नाम।
अब आए
कहीं से कोई हनुमान
निकाल ले तुझे
उस जीर्ण-शीर्ण खण्डहर से
छुपा ले हमेशा हमेशा के लिए
दिल की धड़कनों में
बाबा तुलसी—
फिर देखें सियाराम मय इस जग को

भयभीत वह औरत
खामोश हो जाती है सदा के लिए
उन बंद किवाड़ों के पीछे
कहीं नहीं कोई भी तो नहीं था सुनने वाला
उसकी आखरी हिचकी।
धरी रही पुरानी संदूकची में
उसकी अधूरी इच्छाएँ
कोरे कपड़े—पुरानी-धुरानी गंगाजलि
सूखे पत्ते तुलसी के
याद तो आया होगा उसे
पुत्र का घुटना
सिर के नीचे होता
कानों में कोई कहता
प्राण अंत काले कि तुम सामने हो
बंशी बजाते मन को लुभाते

उसकी माँ
गई—छोड़ गई एक अपराध बोध
उसके लिए—उसकी साँसों में।
वह किससे कहे
कि बाँट ले कोई
उसका यह बोध…?

आस-पास

सुना तुमने !
शहर टूट रहा है
कई अवाजें आती हैं
शहर जुड़ रहा है
प्रतिध्वनियाँ होती हैं
रक्त के सैलाब पर
तेज कर दी है गश्त पुलिस ने ।

मौत आएगी
सदर दरवाजे पर दस्तक देती
और जाएगी राजपथ से
मुँह चिढ़ाती—
एक दुर्गन्ध छोड़ती हुई
अपने बाद ।

कलयुग में
अर्जुन नहीं होते क्या
व्यूह रचना में मरे पुत्र को देख
नही रोते क्या ?
नही फड़कती क्या उनकी भुजाएँ
निकलती नहीं क्या चिन्गारियाँ
आंखों से
कैसी नियति है पार्थ
वृहन्नला बन जीने का व्रत लेना !

प्रार्थना कर
क रत्नाकर वन जाए बाल्मीकी
द्रवित हृ फिर
क्षत-विक्षत किसी क्रौंच को देख
रचना करे किसी रामायण की
बस तुम प्रार्थना करो
केवल प्रार्थना

कृष्ण जन्म लेगा
गीता में लिखा है
पूछता है कापुरुष
कहीं कोई अवतार तो होगा
धर्म के क्षय होने पर
हवाओं से टकराता है
सवालिया निशान।
ख़त्म करो यह अनंत प्रतीक्षा
और सामना करो नियति का
हवा चिल्लाती है
तुम्हें ही नथना होगा काले नाग को।

ये लकीर पीट रहे थे
और भयानक सांप
फन उठाए—
मस्ती में झूम रहा था
लोगों के आस-पास

अब इस शहर में
शादियाँ नहीं होतीं
न बजती हैं शहनाइयाँ
न सुहाग गाती हैं दुल्हनें
न डबडबाई आँखों से
विदा करता है बाबुल
सुर्ख जोड़े में अपनी बन्नो को
बस धरती से फूटती है
लहू की एक धार
और पूरे का पूरा शहर डूब जाता है।

शहर में आज फिर अन्देशा है
आदमियत फिर रेशा-रेशा है
मोर्चे फिर सँभाले हैं उसने
खरीदना लाशें जिसका पेशा है।

किसी कुन्ती ने
कोई भीम नहीं जना माई
जो तुम्हारे बेटे के बदले
चला जाए बकासुर से जूझने
कर सके आतंक मुक्त
पूरे गाँव को।
तोड़ दो यह भरम माई
और देखो
अपनी नंगी आँखों से
उफनता खून का समुद्र
अभी कुछ दिन और

व्यर्थ है
घरों पर नानक, ईसा
या राम की मूर्तियाँ लगाना
वे धर्मनिरपेक्ष हैं
करते हैं तुम्हारे लिए—
डांडी यात्रा
दिल्ली में हो रही है महान दौड़
केवल तुम्हारे लिए
आज़ादी की चालीसवीं सालगिरह पर
तुम देखोगे
पृथ्वी की कक्षा में स्थित
भारतीय उपग्रह
प्रतीक्षा करो सुरक्षा संदेशों की।

इतिहास में न सही
कल के अखबारों में
जरूर होगा—कोई जिक्र
तुम्हारी बेगुनाह मौत का।

आजादी की चालीसवीं वर्षगांठ की
इसे तुम चुप-चाप सह जाओ
देश की एकता और अखण्डता के लिए।

वहा कर ले गया है
चिड़िया के अण्डे
पापी समुद्र—
कहाँ रोया आसमान
विचलित क्यों नहीं हुई धरती
और पेड़
तुम भी तो खड़े रहे
सिर उठाए चुपचाप
क्यों नहीं चीखा जंगल
शहर तो खैर शहर ही था
क्या हुआ
अगस्त्य मुनियों को ?
पूछती है चिड़िया।

तुम मेरे नहीं गोडसे
और तुम भी सांड्स
क्या मैं यकीन कर लूँ
पुनर्जन्म पर ?
क्या मान लूँ—कि
कविता केवल यशकामी होती है
निरर्थक शब्दों का मायाजाल मात्र
नही तो फिर

देखकर लहू भरी चनाव
क्यों नहीं रोया कोई वारसशाह
नहीं वास्ता दिया फिर उसे
लाखों वेटियों के रोने का
मैं किससे पूछूं।

एक मुद्दत से खामोश हूं मैं
कितने हादसे हुए
मेरी आँखों के सामने
गाय चूसने लगी
बछिया के थन,
समुद्र बुझाने लगा प्यास
चाटकर ओस कण
मासूम बच्चों को उछाल कर
नेजों पर
करने लगे लोग करतब।
समझ नहीं सका
कैसे-क्योंकर बदल गया
जिन्दगी का ढब
आदमी परेशां है
बनाने के लिए खुदा का घर
दहशतज़दा—
खुदा सहमा-सा बैठा है
अँधेरे कोने में
आँखों में अनंत रेगिस्तान लिए।

उदास है गुलमोहर

उदास है गुलमोहर —
जैसे उदास हैं इस घर के लोग
प्रश्न मत करो
झांक सको झांको
इनकी रेतीली आँखों में
शायद देख पाओ तुम
भीतर गिरते कगार।

नहीं ! यहाँ कोई नहीं मरा
आप जानिए
यह मातम क्यों है
क्यों है उदास चेहरे
पिटे-पिटे से।

तुम्हारे पास ही नहीं
इनके-उनके—
तमाम लोगों के पास हैं
अनेक प्रश्न,
प्रश्न ! जो पड़ते हैं
घोड़े की पीठ पर
चाबुक की तरह

घाव !
जिसे सह् जाने के अतिरिक्त
कोई रास्ता नहीं
दूर-दूर तक।

टूटते हुए ताजमहल

गुरदीपा बारह का हो गया
बाप के कंधे के बराबर
अँधेरी आंखों में—चमक उठे
हजारों सूरज,
पांवों में—लग गए पंख
हवा के घोड़े पर सवार
खो गया
बूढ़ा बाप,
सपनों की भूलभुलैयां में।

"अव्वल आया हूँ मैं।"
कहा गुददीपे ने
"हेड मास्टर ने—
सराहा है मुझे पूरी मजलिस ने"
हिलोरे लेने लगा वह
सतरंगी झूलों पर
"मुझे नई किताबें दी
आठवी जमात के लिए
मिलेगा मुझे वजीफा।"

अमृत की तरह

रच-बस गई वह आवाज
बूढ़े बाप के कानों में,
रोम-रोम में
खिल उठे हजारों फूल
बरसों बाद
करवट ले रहा था समय
बूढ़ी बाहों में
फड़क रही थीं मछलियाँ
फैल गया, फूल गया
गज भर का सीना।

खुश थी
गुरदीपे की बेबे
गाँव भर में
शीरनियाँ बाँटती
चहकती झूमती
गुनगुनाती हरियाले बन्ने का गीत
शब्द जैसे गले के भीतर
उमड़-घुमड़ रहे थे
रसीले बादलों की तरह
बरसना चाहते थे
बरसों बाद
मरुस्थली आँगन में
फूटी थी
सपनों की कोपलें।

बौरा गई थी बन्तो
नहीं जानती क्यों?
देखा था पहली बार शायद
बापू का हराभरा चेहरा
खिचड़ी दाढ़ी में

चमकते हजारों मोती
पिघलती हुई स्निग्ध रेखाएँ
माथे की—रुपहली दिशाएँ
क्योंकर
नाचने लगी
धरती।

तेज हो गईं धड़कनें।
माँ की छातियाँ—आतुर
पुनः अमृत बरसाने को
चाटती बछड़े का रोम-रोम
निहाल हो गई—देखकर
नन्ही बन्तो।

"बापू ! ले दो न ट्रांजिस्टर।"
मचलने लगी दबी-दबी इच्छायें
गुरदीपे की
"अव्वल आया हूँ मैं—अब तो
पूरे सूबे में
अखबारों में छपी है न
मेरी तस्वीर।
सरकार देगी मुझे वज़ीफ़ा
कापी-किताबें देगा स्कूल।
तुमने कहा था न बापू
बोलो बापू !
ले दोगे न नन्हा ट्रांजिस्टर।"

लौट आया बापू
धरती पर धीरे-धीरे
कानों में बजने लगा
ट्रांजिस्टर
"तेरा चाचा भेजेगा पुत्तर

दूर मुल्क से
एक प्यारा ट्रांजिस्टर
घर भर में
गूँजेगी उसकी आवाज
पूरी होगी जरूर
तेरी यह साध
करूँगा न्योछावर तुम पर
लहू का हर कतरा
झूमूँगा !
नाचूँगा !
बस्ती-भर में बाँटूँगा प्रसाद ।"

अकस्मात् बदल गया दृश्य
आँधी के वेग से
लौटी थी बन्तो
"सुन ली तुम्हारी सुन ली
वाहे गुरु ने"
लहराई हवा में
"कैसा प्यारा ट्रांजिस्टर है बापू ।"
गली में छोड़कर
चला गया चाचा…
पूरा नही बोल पाई बन्तो
हठात निकला एक राक्षस
धुएँ-सा फैल गया
सपनों की दुनिया में
अट्टहास !
गगनभेदी अट्टहास
छितर गईं बोटियाँ
हड्डियाँ बिखर गईं
उजड़े हुए घर में थी
मौत की खामोशी

और जंगल।
सिर झुकाए खड़े थे
मायूस पेड़।
फट पड़ना चाहता था आसमान
गुस्से मे
चीखती रही रात
नोचती रही बाल
राक्षस की तलाश में।

सपना हुए स्वर्ग के लिए

सिर्फ़ प्रार्थना मत करो
माटी मिले लोगों के लिए
आँसुओं की अंजुलि काफी नहीं
अखबारों में शोक प्रस्ताव
सपना हुए स्वर्ग के लिए
उठाओ फिर
ठोस इरादों-भरा हाथ
देश के हर कोने से
क्षुद्र स्वार्थों की लांघ कर परिधियाँ
मौत को मुँह चिढ़ाओ
सिसकियों के बीच
गाओ जीवन का गीत
जैसा गाया था
आजादी की पहली सुबह
धरती के स्वर्ग के लिए
कि खिल उठे
लाल गुलाब की मानिंद
कश्मीर
एक बार फिर
इरादों के पवित्र झरनों में
नहा उठे पूरा प्रदेश।

संगीनों का भयानक शोर
दिलों की गहराइयों तक
गहन अंधकार
लील नहीं सकता सपनों को
हमारा ! तुम्हारा ! उनका भविष्य !
एक बार फिर पूरी ताकत से उठो
उठो दोस्त ! कदम-ब-कदम
कतरा-कतरा जिन्दगी फिर लौटाओ
कश्मीर के बुझे दिलों में
फिर जलाओ जिन्दगी की मशाल
इतिहास के धूमिल पन्नों पर
सूखे आँसुओं को
दो एक परिभाषा
कि उम्मीद आए—
भले ही धीरे-धीरे
जख्मी पाँवों से,
जिन्दगी को हारने न दो।

कश्मीर
तुम्हारे आँसुओं में शामिल हैं
उन सबके आँसू
जिनके दिलों में जिन्दा है इन्सानियत
इन्सानियत
जो सजल नेत्रों से प्रतीक्षारत है
तुम्हारे घरों में
किलकारियाँ सुनने के लिए
एक बार फिर
सुनने के लिए
रबाब पर
कोई मीठी धुन
कश्मीर
थमके रहना धुन के।

आभार

जलियाँ वाला बाग़
शहीद स्मृति में—दो क्षण
मौन हो जाएँ
आँख मीचकर—गली-चौराहों पर
बे इरादा—गोलियाँ चलाए
आँख खोल कर देखें
अपने निशाने का कमाल
कितने लोग मरे
कितने हुए बदहाल

डायर के वारिस हम
धर्म की आजादी की खातिर
बढ़ आए हैं कितना आगे
स्मरण करें
कारनामों का लम्बा सिलसिला
तो गर्व से
फूल जाता है सीना

आभारी हैं हम
अनूठे गुरुओं के
दिखाई जिन्होंने यह अनुपम राह

स्टेशन रोड, बीकानेर

संगीनों का भयानक शोर
दिलों की गहराइयों तक
गहन अंधकार
लील नहीं सकता सपनों को
हमारा ! तुम्हारा ! उनका भविष्य !
एक बार फिर पूरी ताकत से उठो
उठो दोस्त ! कदम-ब-कदम
कतरा-कतरा जिन्दगी फिर लौटाओ
कश्मीर के बुझे दिलों में
फिर जलाओ जिन्दगी की मशाल
इतिहास के धूमिल पन्नों पर
सूखे आंसुओं को
दो एक परिभाषा
कि उम्मीद आए—
भले ही धीरे-धीरे
जख्मी पांवों से,
जिन्दगी को हारने न दो।

कश्मीर
तुम्हारे आंसुओं में शामिल हैं
उन सबके आंसू
जिनके दिलों में जिन्दा है इन्सानियत
इन्सानियत
जो सजल नेत्रों से प्रतीक्षारत है
तुम्हारे घरों में
किलकारियां सुनने के लिए
एक बार फिर
सुनने के लिए
रबाब पर
कोई मीठी धुन
कश्मीर
थकें रहना धुन के।

आभार

जलियाँ वाला बाग़
शहीद स्मृति में—दो क्षण
मौन हो जाएँ
आँख मीचकर—गली-चौराहों पर
बे इरादा—गोलियाँ चलाए
आँख खोल कर देखें
अपने निशाने का कमाल
कितने लोग मरे
कितने हुए बदहाल

डायर के वारिस हम
धर्म की आजादी की खातिर
बढ आए हैं कितना आगे
स्मरण करें
कारनामों का लम्बा सिलसिला
तो गर्व से
फूल जाता है सीना

आभारी हैं हम,
अनूठे गुरुओं के
दिखाई जिन्होंने यह अनुपम राह

पैदा की हमारे भटके दिलों में
खून पीने की नई चाह
सौ-सौ बार आभारी हैं हम
नतमस्तक !

वर्षों पहले

वर्षों पहले
आँखों में वसंत लिए
आई थी वह इसी जगह।
इसी अमृतजल से
भरी थी उसकी गोद
वर्षों पहले।
आस्था का फूटा था अंकुर
सुनहली आभा की नन्ही कलियाँ
एक गुदाज़ कली चटकी थी यहीं
वर्षों पहले।

वर्षों बाद
आँखों में मरघट लिए
खड़ी है वह उसी जगह
उसी विष जल से
उजड़ी है उसकी गोद
वर्षों बाद
टूटा है आस्था का वटवृक्ष
झुर्रीदार बूढ़ी पत्तियाँ
एक कँटीला ठूँठ
चरमराया है यहीं
वर्षों बाद।

पिता-दर-पिता

पिता के कंधों पर
इठलाता मासूम बच्चा
खुली आँखों से देख रहा है सपने
भीड़-भरी सड़कों पर
तलाशता गुदगुदे क्षण

दुनिया लगती है एक सुन्दर खिलौना
उसे नहीं मालूम,
पिघलता हुआ डर
पिता की आँखों में
टूटते सपने
कँपकँपाते पाँव
बेवस आदमी के
दिल की धड़कनें
रुक-रुक कर
चलती-रुकतीं
फिर चलती
धाँय ! धाँय
गोलियों की आवाज़
चीरती हुई छाती।
खून से लथपथ

धूल चाटती
पिता की लाश

पिता !
सुबकता है बच्चा
रक्तरंजित हाथों से
झिझोड़ता निर्जीव शरीर
पिता !
उठो पिता—घर चलें
सिसकता है बच्चा।

कहीं कोई आवाज नहीं
दूर-दूर तक
आदम-न-आदमजात
न कोई अपना
न कोई सपना
भयानक सुनसान शहर।

बंद दरवाजे
खिड़कियाँ ख़ामोश
बारूदी धमाकों से
चूर-चूर शीशे
सपनों की तरह
फैले सड़कों पर।

परमपिता !
चिल्लाता है बच्चा
उत्तर की प्रतीक्षा में
लौट-लौट आती है
उसकी चीख
कहाँ हो तुम ?

सच्चे पातशाह
द्रवित आवाज
पाश-पाश हो जाती है
टकराकर पथरीली दीवारों से।

कैद है ईश्वर
इबादतगाहों से
उठता है धुआं।
मासूम बच्चा
कहां जाए—पूछे किससे
अपने घर का पता?
कोई तो बोले
पिता।
किसी की आजादी के विरुद्ध
कुछ भी तो नहीं किया था तुमने।

परमपिता
मजबूर है अपने ही घर में कैद
अब कोई किससे कहे —
अंधे भविष्य का दर्द
आवाजें कहां हो गई गुम
'सतनाम सिरी—वाहे गुरु
नानक नाम चड़दी कला
तेरे भाणे सरबत दा भला।'

बारूदी धमाका
सुनाई देता है बस
मासूम बच्चा
झुलस रहा है जलते प्रश्नों के मध्य।

बूढ़ा बच्चा

फटी-फटी
उदास आंखों से
मरते हुए बाप की आंखों में अटका
आखरी पैगाम
पढ़ रहा है बूढ़ा बच्चा।

उसके चेहरे पर उभर आया है
सवालिया निशान
कि उसका मरना तो खैर लाजमी था ही
कि उसका घर
बहुत पास था खुदा के घर से
जहां हर रोज
एक नामालूम चीख
कुछ बेगुनाह लहू के छींटे
खिलते थे हर लम्हा नए गुल
अल्लाह की इबादतगाह में
और खुदा छिपा लेता था उन्हें
अपनी पनाह में।

बूढ़ा बच्चा . .

गूंगा हरगिज नहीं है
किन्तु ! अचानक
गुम हो जाती है उसकी जवान
वहरे हो जाते हैं उसके कान।
अचानक उसकी आँखों में
उमड़ आता है
गहरा ठंडा अँधेरा,
चेहरे पर
उग आते हैं कँटीले कीकर।

ये जो कुत्ते की मौत
मरते है कितने हर रोज़
उन्हें आप
किस सूची में रखेंगे श्रीमान ?
एक वेबस आह की मानिंद
फैल जाता है प्रश्न हवाओं में।

पक्का नमाजी
खुदा-परस्त था मरने वाला
आजादी का सिपाही
वतन पर मिटने वाला
वह देखता हमेशा
आने वाले खूबसूरत दिनों के सपने
'फूल-से बच्चों के
सुनहरे भविष्य के सपने।

उसे शहीद का दर्जा तो
खैर नही ही मिल सकता
फिर इस मौत को
क्या नाम देंगे जनाब ?
किस म्यूजियम में रखेंगे

उसके टूटे हुए ख्वाब
चौराहे पर बैठा
बूढ़ा बच्चा
उत्तर की प्रतीक्षा में है या गोली की ?

पेड़ गवाह है

ठीक इसी जगह
बचाया था मैंने उसे।
एक भयानक नाग
जहरीले फन फैलाए
मचल रहा था उसे डसने को
पेड़ गवाह है।

ठीक उसी जगह
कुचला था मैंने उसका जहरीला फन
इतरा रहा था जो
रक्त को विष में बदलने के
अपने कुटिल इरादों पर
पेड़ गवाह है।

ठीक इसी जगह
विषधर के रक्त पर
पनपा था इन्सानियत का बीज
अजनबीयत हो गई थी काफूर
जात-मजहब की जमीन को दरक कर
निकला था आदमीयत का नन्हा पौधा
पेड़ गवाह है।

ठीक इसी जगह
जहाँ आप खड़े हैं श्रीमान
वहीं पेड़
जिसको गवाही की दुहाई दी थी मैंने
वही, जिसकी जड़ों में था
साँप का विषैला रक्त
रिसने लगा पत्ती-दर-पत्ती।

ठीक इसी जगह
खेले थे हम
'समझदार' होने से पहले
डाली थी हमने गलबैयाँ
बदली थी पगड़ियाँ . .
पेड़ गवाह है।

ठीक इसी जगह
देखा था हमने दुःस्वप्न
हमारे चेहरों पर उभर आए पहाड़
प्यार करने वाले हाथों से
दिए हमने
एक-दूसरे के चेहरों पर घाव
मरा हुआ साँप
फिर खड़ा था हमारे दरम्यान
फन फैलाए
डसने को आतुर
पेड़ गवाह है।

संदिग्ध परछाइयाँ

कोई आकांक्षा नहीं
किसी पुरस्कार की
न प्रतीक्षा किसी नागरिक अभिनन्दन की
मैं केवल इतना-भर चाहता हूँ
कि सन्ध्या होने पर
लौटूँ जब घर
तो सहमे हुए न हों बच्चे
न हो एक गीला सन्नाटा
पत्नी की आँखों में
या दीवारों पर खून के छींटे
या मद्धम रोशनी के गिर्द
कोहरे की मानिंद
जमा हुआ डर
कि दरवाज़े पर
हल्की-सी दस्तक होते ही
गिर जाएं
दिलों की हजारों कोठरियाँ
एक के बाद—एक।

रात को जब लेटूँ
गिनता हुआ छत की कड़ियाँ

या देखता हुआ छिपकलियों की गश्त
तो कोई हौलनाक किस्सा
न हो सुनने को
न हों दीवारों पर नाचतीं संदिग्ध परछाइयाँ
जो लील जाए
मेरी तमाम कविताएं
बस इतना भर चाहता हूं मैं
केवल इतना ही तो—

तेरी लीला

तेरी महिमा
अपरम्पार है प्रभु
न्यारे हैं तेरे ढंग
न जाने किस रूप में
देता है तू दीदार
मेरे करतार
करता है पापियों का दलन
भक्तों का उद्धार,
हिरण्यकश्यप का करने को संहार
धारा था तूने
नरसिंह अवतार
कि न धरती पर मारूँ
न आकाश पर करूँ संहार

हम मूरख खलकामी
क्या जानें तेरी माया
चढ़ती धूप
बन जाए कब काली छाया
चक्र सुदर्शन छोड़
कब धारण कर ले तू
दोनाली बंदूक

कि अपने भक्तों का
अपने ही हाथों करे वेड़ा पार
न धरती न आकाश पर
चलते वाहन में करतार।
न कहीं शवयात्रा निकले
न सजे अर्थी
न पुत्र करे पिण्डदान
न दे कोई मुखाग्नि
न आँखों से वहे दो वूंद जल
न समाधी
न यादगार।

मोहपाश से मुक्त प्राणी
कि मौत नहीं लगती भयानक
नही लगती जिन्दगी प्रिय
कही कुछ वचा हो
सुंदर सजीव
कि जिसके लिए हो जिजीविषा
कि जिसके लिए मानव जिए।

कैसे-कैसे खेल खेलता है
तू पालनहार
कि तेरे ही घर
जहाँ पाते थे लोग
प्रकाश-किरण
छाया है गहन अंधकार
नतमस्तक हैं
राजा-प्रजा, जोगी और भोगी
सभी जन
निकलेंगे जव-जव भी
सुखद यात्राओं पर

कभी लौटकर
नहीं देखेंगे घर द्वार
यह पाप है या पुण्य
सृष्टि या विनाश
हम विकल्पहीन भ्रमित जन तो
कर लेंगे विश्वास
आए दिन
अपने बच्चों की सलामती के लिए
करते रहेंगे
तेरे दर पर अरदास

किन्तु कल
हममें से ही पैदा होगा
कोई सिर-फिरा कबीर
चेतावनी की मुद्रा में
गली-गली बाँटता संजीवनी
मौत के तांडव के खिलाफ।
यह सम्भव है अवतारी प्रभु
यह हो सकता है।

वह बच्चा

हौलनाक रातों में
गली-गली भटकता
वह बच्चा।
सन्नाटे को चीरती—उसकी आवाज
छू लेती है
बिजली की तरह
दिल की धड़कनों को।

जिस घर से
बहती है रक्त की धार
कोयले से लिख भर देता है
"मैंने मौत को—
नंगा नाचते देखा है
खून के कुल्ले करते।"
इतनी सी उम्र में
जान गया है वह आत्मा का रहस्य
वह नचिकेता नहीं है
वाजश्रवा का पुत्र
माधो मनिहार था उसके पिता का नाम
कोई नहीं जानता जिसे
जब तक जीवित था—जानते थे

दस-पांच लोग
अब एक भी नही

वह न ईश्वर को कोसता है
न रक्षा के लिए करता है
प्रार्थना
ईश्वर हास्यास्पद हो गया है
उसके लिए
एक फालतू सम्बोधन
अब नहीं रहे
जन्म और मृत्यु उसके हाथ
लोग छोड़ रहे हैं
धीरे-धीरे उसका साथ
बेचारा अकेला बेबस
कितने दिन जिएगा भला
इस मौत के नगर में ?

सन्तो मौसी

सब जानती है सन्तो मौसी
किसने उजाड़ी है उसकी गोद
पोंछा है किसने—उसके
माथे का सिंदूर
सब जानती है वह—
बरसों पहले किस अनाथ को
पिलाया था
अपनी छातियों का दूध
पर कोई क्यों नहीं पूछता
उसके दिल का हाल ?

कल तक
उसी की सलाह पर
लेता था पूरा गाँव करवट
गहमागहमी में
भूल जाती थी सन्तो मौसी
जलाना घर का चूल्हा

बरसों से
बदन पर कफन लपेटे
बुत बन गई है

सन्तो मौसी
दीवार पर टँगी तस्वीरों के आगे।
निचुड़ गया है
उसका कतरा-कतरा रक्त
जिसके चेहरे को देखकर
पीती थीं सुहागिनें पानी
कितना भयानक हो गया है समय ?

कब तक

कब तक धड़कोगे मेरे मन ?
एक-एक कर
चिर निद्रा में सो गए
बस्ती के लोग
झील-सी मटमैली चादर ओढ़
भीतर छिपाए
एक गहरी थकन ।

थम गई है हवा
सीटियां बजाती—करती छेड़छाड़
उदास देवदारु से
वीरान पहाड़ियों में है अब
अजीब-सा कम्पन !

अनजानी दिशाओं में
मुड़ गए हैं तमाम परिन्दे
बहेलिए खोजते हैं
एक-एक कर—उजाड़ घोंसले
घाटी की जिन्दगी
हो गई है इक सपन ।

उदास शंकराचारी
खुली आँखों देखते हैं नरमेध
हजरत बल लाचार
सूना हो गया
खीर भवानी का भवन।

जल रहा है
धरती का स्वर्ग
कूच कर गए देवता
पेड़ों पर सूख गए
गदराए सेव
झुलस गए गर्वीले वन।

जन्म : 28 दिसम्बर, 1940
चन्योट (जिला झंग) पाकिस्तान।

व्यवसाय : अध्यापन

प्रकाशित कृतियाँ :

काव्य-संग्रह : 1. पहली बारिश में
2. बंद कमरों की संस्कृति
3. एक नदी की देह *गाथा* (पुरस्कृत)

अनुवाद : 1. भारतीय साहित्य की समस्याएँ : ई० पी० चेलीशेव

सह सम्पादक : हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ-1
हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ-2
रास्ता इधर है (कविता संग्रह)

संपर्क : जे-363, सरिता विहार मथुरा रोड,
नयी दिल्ली-110044